खुले में शौच के लिए मजबूर बेघर स्त्रियां

रूपम मिश्र

वे खानाबदोश मनुष्य भी मनुष्य ही होते हैं, जिनके पास ज़मीन का कोई टुकड़ा नहीं होता, सर पर कोई छत नहीं होती। जिन्हें राज्य व समाज नागरिक की तरह नहीं देखता, लेकिन वे होते हैं इसी देश के नागरिक। गाँव से लेकर शहर और क़स्बों में, कहीं भी किसी खुली जगह पर इनकी रहनवारी हो जाती है। इलाहाबाद शहर में झूसी पुल से लेकर नैनी पुल तक सरकारी ज़मीन का मैदान फैला हुआ है और इनमें जाने कितनी झोपड़ियाँ बनी हुई हैं। कुछ स्त्री-पुरुष बच्चे खुले में रहते दिखाई देते हैं। कुछ वहीं झोपड़ियो में रहते हैं। देखने से लगता है कुछ घुमंतू हैं और कुछ स्थायी रहने वाले। लेकिन सबका जीवन बेहद त्रासद है।

सालों से ये इसी हाल में रह रहे हैं। ग़रीबी भुखमरी और सर पर छत के अनेक वादे सरकारों ने किए, लेकिन इनके जीवन मे कोई बदलाव नहीं आया। वहाँ से गुज़रते हुए उनका जीवन देखा जा सकता है कि कितनी बदहाली और ग़रीबी का जीवन जी रहे हैं ये। इनके पास दैनिक ज़रूरतों के लिए बुनियादी सुविधाएं नहीं हैं। अशिक्षा, ग़रीबी और तरह-तरह के डर ने इनको मुख्यधारा में शामिल होने के कागजी प्रमाणों से भी दूर रखा है। बहुत बार यहां से गुज़रते हुए हमने देखा कि सुबह इन्हीं मैदानों में शौच के लिए कुछ बच्चियाँ, कुछ स्त्रियाँ इधर-उधर घूम रही हैं, लेकिन उन्हें कहीं ऐसी जगह नहीं मिल रही है जहाँ एकांत हो।

सड़क पर चलते हुए हम तो वहाँ से गुजर जाते हैं, जाने कैसे ये स्त्रियां वहाँ शौच कर पाती होंगी क्योंकि चारों तरफ़ लोग होते हैं। सुबह का समय कुछ खेलने वाले, कुछ दौड़ लगाने वाले लोग भी आसपास ही रहते हैं। हम जब इनसे बातचीत करने के लिए गये तो पहले दिन उन्होंने कोई बात नहीं की। हम वहीं टहलते हुए परेड ग्राउंड की तरफ चले गये और वहाँ झोपड़पट्टियों के कुछ बच्चों से हमने बातचीत की तो पता चला वे स्कूल नहीं जाते।

हमारे साथ में गयी इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की एक छात्रा साक्षी ने उनको समझाना चाहा कि स्कूल जाओगे तो किताब, बस्ते, ड्रेस के साथ खाना भी मिलेगा और साथ में वहाँ शौचालय की भी सुविधा रहती है। लेकिन बच्चों ने बहुत से कारण बताए, जिनमें प्रमुख कारण जागरूकता का न होना था। फ़िलहाल दूसरे दिन हम फिर इन मैदानों में गये।

चूंकि चुनाव का समय था, तो कुछ लोग हमारे पास आ गये। वहाँ हमने कुछ महिलाओं से बातचीत की और पाया कि खुले में शौच करने के लिए मजबूर उन स्त्रियों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। अठारह वर्षीय ख़ुशबू (बदला हुआ नाम) अविवाहित हैं, जिनकी माँ की मौत तीन साल पहले हो गई थी और पिता कभी दिहाड़ी करते हैं, कभी नहीं करते। उन्हें नशे की लत है। ख़ुशबू की एक छोटी बहन और एक छोटा भाई भी है। इसके पहले एक दिन ख़ुशबू को हमने देखा था, हाथ में बोतल लेकर शौच के लिए मैदान में भटकते हुए। ख़ुशबू ने बताया कि वो कचरा और कबाड़ बीनती हैं। और ज़्यादातर बच्चे औरतें वहाँ आसपास भीख मांगते हैं। ख़ुशबू से हमने जानना चाहा कि यहाँ किस तरह महिलाएं और बच्चियां इस स्थिति का सामना करती हैं और किन कारणों से

सार्वजनिक शौचालय का उपयोग नहीं कर पातीं। उन्होंने बताया कि यहां सारी महिलाओं व बच्चियों की यही स्थिति है। वे सब सुबह-शाम हाथ में बोतल लिए शौच के लिए भटकती हैं। इतने पैसे भी नहीं कि कहीं सार्वजनिक शौचालय का उपयोग कर सकें।

हमने कुछ सवाल खुशबू से किए। जो जवाब मिले, उनसे पता चला कि अशिक्षा और ग़रीबी के साथ जागरूकता की बेहद कमी उनकी समस्याओं के मूल में है। कानूनी जटिलता भी उनके लिए एक बाधा है। जैसे हमने पूछा, क्या आपके पास आधार कार्ड, वोटर कार्ड है, अगर नहीं है तो क्यों नहीं बना? हमने बच्चों को स्कूल भेजने को लेकर सवाल किया कि क्या बच्चे स्कूल जाते हैं या क्या राशन मिलता है। उनको न राशन मिलता है न बच्चे स्कूल जाते हैं क्योंकि राशनकार्ड और आधारकार्ड नहीं हैं। बच्चों को स्कूल नहीं भेजने में जो कारण सामने आया, वो भी आधार से जुड़ा मसला था। दूसरे ज़्यादातर बच्चे काम करते हैं: जैसे कचरा, कबाड़ बीनते है या भीख माँगते हैं।

उन स्त्रियों से सवाल करते हुए जाने क्यों मन में लग रहा था कि हम कोई हिंसा कर रहे हैं क्योंकि जब सर पर छत नहीं है तो शौचालय की कल्पना ही नहीं की जा सकती, ऐसे में 'शौच जाने के लिए किस-किस तरह की दिक़्क़तें झेलती हैं आप सब' जैसे सवाल पूछते हुए लगता रहा कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री होना ही हमारे लिए जैसे खुद दिक़्क़त की बात है। ख़ैर इस सवाल का जबाब उन्होंने विस्तार से दिया। उन स्त्रियों का कहना था कि रात में सबसे ज्यादा कठिनाई होती है क्योंकि अंधेरे में अपराध की आशंका बढ़ जाती हैं। कुछ अपराध उन्होंने गिनाए भी जिसकी पुलिस से शिकायत भी की गयी थी लेकिन कुछ नहीं हुआ।

वहीं खड़ी बुज़ुर्ग महिला महरुना ने बताया कि शौच के लिए बैठी महिला को आसपास के लोग देखते रहते हैं, कभी-कभी बाइक से जाते लोग भी खड़े होकर देखने की कोशिश करते हैं हालांकि महरुना ने बताया कि तब वो ख़ूब गालियाँ देती हैं। खुशबू ने बताया कि वो एक घुमंतू समुदाय से आती हैं। लेकिन सालों से वो लोग यहीं रह रही हैं। उसका कहना था कि यहाँ के जीवन में स्त्रियों के साथ छेड़खानी या यौन उत्पीड़न जैसी घटनाएं घटती रहती हैं।

अपनी एक सहेली के साथ हुई यौन-हिंसा की घटना का ज़िक्र करते हुए खुशबू ने बताया कि उसकी सहेली अपनी बड़ी माँ के साथ घूम-घूम कर गीत गाती थी। आसपास के ही कुछ लड़के छेड़ते थे। एक दिन रात में जब वो अकेली शौच के लिए गई तो लड़कों ने खींचकर उसके साथ यौन-दुर्व्यवहार किया। चिल्लाने पर सब इकट्ठा हुए। लेकिन उसके बाद वो लड़की कहीं और रहने चली गई। ऐसे जाने कितने अनगिनत अपराधों की लंबी फेहरिस्त थी उन औरतों के पास, जिनकी कहीं सुनवाई नहीं। बेघर मनुष्य का जीवन तो मुश्किल होता ही है लेकिन बेघर स्त्री का जीवन यातनाओं का संग्रहालय होता है।

अनगिनत मोलेस्टेशन, पॉस्को (POSCO) और सेक्सुअल हरासमेंट केस इनकी देह और मन में दर्ज होते हैं जिनकी कहीं कोई सुनवाई नहीं है। इनका जीवन देखते हुए बार-बार ख़याल आता है कि आख़िर यह देश किसका है। क्या देश बस उन्हीं का है जिनके पास संपत्ति है? क्या जिनके पास संपत्ति नहीं है वो नागरिक होने की श्रेणी में नहीं होते।

ग्रामीण इलाक़ों में ढेरों जातियों की स्त्रियों को देखा है, जो घर-घर गीत गाकर भीख मांगती हैं। ये ज़्यादातर संपत्तिहीन घुमंतू जातियों की औरतें होती हैं जिनको कसबिन, जोगिन, मंगतिन, डफ़लिन आदि कहा जाता है। गाँव में इनका जीवन भी ऐसा ही होता है लेकिन इधर कुछ सालों में इन सबका पलायन शहर की ओर हो गया है। गाँव में भी बहुत घरों में शौचालय नहीं बने होते हैं लेकिन स्थिति शहर से थोड़ी सी भिन्न है। गाँव में कितने घर हैं जहाँ शौचालय नहीं बनाए गए हैं, लेकिन उनकी परिस्थितियों में कई सारे अंतर्विरोध हैं। जैसे, कुछ घरों में पुरुष एकदम निरंकुश हैं। घर के सारे निर्णय वही लेते हैं। बहुत बार उनका ध्यान ही नहीं जाता इस असुविधा की तरफ़ और महिलाएं कह

नहीं पाती उनसे अपनी दिक़्क़तें।

उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के बिनैका गाँव में हाइवे से जो सड़क जुड़ती है, उस पर सुबह शाम शौच के लिए बैठी स्त्रियां दिख जाती हैं। ये स्त्रियां बिनैका ग्राम पंचायत के हाशिये के समुदाय से आतीं हैं। हमने कुछ स्त्रियों से बातचीत की तो उन्होंने बताया कि उनके समुदाय में बहुत कम लोगों के पास घर है। वहाँ एक-दो शौचालय बने भी हैं, लेकिन इस्तेमाल में नहीं हैं। ज़्यादातर महिलाओं के घरों की आर्थिक हालत बेहद ख़राब है। कुछ घरों में सिर्फ़ बुज़ुर्ग हैं। उनके पास झोपड़े ही हैं लेकिन गाँव में वो उतनी ज़मीन उनके पास अपनी थी जबकि शहरों में हालत इससे अलग हैं। शहरों के ज़्यादातर स्लम एरिया में शौचालय नहीं हैं। कुछ सार्वजनिक शौचालय का निर्माण हुआ भी है तो चल नहीं रहे हैं, अनदेखी का शिकार हैं।

इलाहाबाद में अकबर का बनवाया हुआ बक्शी बांध है। बक्शी बांध के नीचे रेलवे लाइन के किनारे बने स्लम एरिया में हमने जाकर देखा कि वहाँ रहने वालों की स्थिति ख़राब है। किसी के पास शौचालय नहीं है। जो सरकारी शौचालय बने हैं, वो ख़राब अवस्था में है। वहीं संजय नगर के इलाके में हमने देखा कि बहुत सी स्त्रियों के पास शौच का कोई साधन नहीं है। लगभग यही हाल देश के सारे शहरों का है। जबकि स्वच्छ भारत मिशन के तहत शहर व गांव को स्वच्छ रखने के उद्देश्य से इस योजना का आरंभ किया गया था। इस योजना के तहत गांव एवं शहर के सभी घरों में शौचालय का निर्माण होना था। इस योजना के तहत निजी और सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण भी हुआ, लेकिन स्लम इलाक़ों में ज़्यादातर सामुदायिक शौचालय की हालत बदतर है और ये वहाँ के लोगों की ज़रूरतों को पूरा नहीं करते हैं। यही नहीं उन इलाक़ों में जो सार्वजनिक शौचालय उपयोग लायक हैं भी, वे झुग्गी झोपड़ी में रहने वाले लोगों के लिए काफ़ी ख़र्चीले पड़ते हैं।
आज से कुछ साल पहले एक अंतरराष्ट्रीय स्वयंसेवी संगठन 'वाटरऐड' के लिए दो शोधकर्ताओं द्वारा उत्तर प्रदेश के कुछ शहरों में किए गए एक शोध के अनुसार स्लम के लोगों का सार्वजनिक शौचालय पर ख़र्च उन परिवारों द्वारा किए गए खर्च से 104 गुना अधिक है, जिनके पास खुद का शौचालय है। आमतौर पर शहरों के सार्वजनिक शौचालय एक बार इस्तेमाल के लिए एक व्यक्ति से पांच रुपये लेते हैं। इस तरह पांच सदस्यों वाले परिवार के लिए महीने में यह ख़र्च 750 रुपये पड़ता है। शोधकर्ताओं के अनुसार लखनऊ के तीन सबसे पॉश इलाक़ों में मध्यम और उच्च आय वाले परिवारों के लिए सीवरेज टैक्स केवल 50 रुपये प्रति माह था। सबसे अधिक मलिन बस्तियों वाले तीन क्षेत्रों में कम आय वाले शौचालय युक्त घर के लिए यही राशि महज 7.2 रुपये प्रति माह थी।
वाटरऐड का कहना है कि भारत सरकार के स्वच्छता अभियान में घरों में शौचालय बनवाने पर ज़ोर है लेकिन ज़रूरत है उनके बारे में सोचने की, जिनका कोई घर ही नहीं है। उनके लिए कोई व्यवस्था किए बग़ैर खुले में शौच की समस्या दूर नहीं की जा सकती।
बेघर लोगों का जीवन निश्चय ही बेहद कठिन होता है, ख़ासकर स्त्रियों का, लेकिन हमारी सामाजिक कंडीशनिंग मूल रूप से पितृसत्तात्मक है, शायद इसलिए हम उस नारकीयता की कल्पना ही नहीं कर पाते, जिसमें वे दिन रात रहती हैं। यह व्यवस्था पर बड़ा सवाल है क्योंकि वे भी इसी देश की नागरिक हैं।

(लेखिका हिंदी की चर्चित कवयित्री और टिप्पणीकार हैं।)